THE ECONOMIC TIMES

Date: 15-07-26

Firm Up Farm Product Quality Control

ET Editorials

After Indian mangoes were rejected in Japan, and herbs, spices and nuts were flagged in the EU, basmati rice is now facing biosafety-related scrutiny in Australia. The rice, mainly from Punjab and Haryana and worth about 200 cr, is stranded at Australian ports after failing to meet fumigation requirements. The regulatory agency in Australia has suspended 44 Indian fumigation service providers.

While Australian authorities have clarified that there is no ban on Indian basmati imports and that safety of the rice is not in question, Indian agricultural products have repeatedly been found to contain pesticide residues and heavy metals above permissible limits in other countries. Addressing this issue should be a priority, not a matter for ad-hoc negotiations between regulators and industry. Strong food safety systems are essential not only to protect India's expanding agricultural exports but also health of consumers at home and abroad. This requires science-based standards, a farm-to-port traceability system leveraging DPI, stronger compliance mechanisms and rigorous testing across the supply chain.

India must also begin phasing out hazardous pesticides and chemicals with well-established health risks, particularly those banned or severely restricted in many countries, such as paraquat and 2,4-D. Use of unauthorised fruit-ripening agents must be eliminated. Reducing dependence on pesticides and chemical fertilisers will improve quality of farm products, safeguard public health, and reduce soil and water pollution. If India aspires to be a trusted global supplier of agricultural products, meeting highest food safety and quality standards must become a competitive advantage, not an afterthought, both at home and away.

दैनिक भास्कर

Date: 15-07-26

युद्ध और सूखे के दोहरे संकट से कई चुनौतियां

संपादकीय

ताजा आरबीआई रिपोर्ट के अनुसार खुदरा महंगाई 4% की सीमा को 16 माह में पहली बार लांघते हुए 4.4% पर पहुंच गई है। मौसम की रिपोर्ट व्यापक सूखे के संकेत दे रही है यानी कृषि उत्पादन पर असर पड़ेगा। युद्ध फिर शुरू होने और होर्मुज के फिर बंद होने से क्रूड संकट फिर बढ़ेगा, जिससे हर क्षेत्र में आपूर्ति - समस्या विकराल

होगी। मुश्किल केवल भारत नहीं पूरी दुनिया की है। हैवर्स एनालिटिक्स की रिपोर्ट बताती है कि जंग के कारण चार महीनों में अमेरिका, जापान और यूरोप में भी महंगाई लगातार बढ़ी है। लेकिन भारत जैसे कम आय वाले देश में खुदरा महंगाई का संकट सीधे गरीबों और किसानों पर असर करता है। आरबीआई की रिपोर्ट से पहले सीएमआईई के अनुमान के अनुसार भारत में महंगाई इसलिए बड़ी क्योंकि यातायात खर्च गत अप्रैल से आसमानी हो गया। और अभी इसके और ऊपर जाने की आशंका है। इससे रोजमर्रा के सामान भी और महंगे होंगे। माइक्रोइकोनॉमिक आंकड़े देने वाली सीईआईसी के अनुसार भारत में जहां मैन्युफैक्चरिंग की स्थिति पूर्ववत् है, वहीं कंस्ट्रक्शन और सेवा क्षेत्र के ट्रेड और परिवहन में भारी गिरावट दर्ज की गई है। कंस्ट्रक्शन में ग्रामीण गरीब शहरों में आकर रोजगार पाता है, लिहाजा इसमें गिरावट उन श्रमिकों को वापस गांव की ओर मोड़ेगी। सूखे से खेती पर असर होगा, इसलिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर असाधारण दबाव पड़ेगा। भारत को क्रूड का विकल्प तो रूस से मिल रहा है, लेकिन दोहरे संकट यानी सूखे और आपूर्ति- समस्या से निपटना मुश्किल होगा।

Date: 15-07-26

सबसे बड़ी समस्या यह कि हमें अब कुछ भी बेचैन नहीं करता

प्रियदर्शन, (लेखक और पत्रकार)

राम मंदिर में चढ़ावा-चोरी को लेकर चल रहा विवाद भावुकता से राजनीति तक की परिधि में पसरा हुआ है- किसी को भावनाएं आहत होने की फिक्र है तो किसी के सामने सवाल है कि इसका यूपी चुनावों पर क्या असर पड़ेगा। लेकिन जो एक बुनियादी चिंता इस पूरे मसले से सामने आनी चाहिए, वह सिरे से गायब है। दरअसल इस चढ़ावा-चोरी ने याद दिलाया है कि हम मूलतः भ्रष्टाचार या कई अन्य बुराइयों को चुपचाप सहने और अकसर उसमें शामिल रहने वाले समाज में बदल चुके हैं। चढ़ावा-चोरी करने वाले लोग अगर भगवान से नहीं तो भक्तों से तो डरते- कि अगर यह पकड़ में आ गया तो उनका सामाजिक बहिष्कार शुरू हो जाएगा। लेकिन ऐसा कोई डर उनके भीतर नहीं था। उनमें से कुछ लोग अगर पकड़े गए और जेल की सलाखों के पीछे हैं तो भी यह संदेह बचा हुआ है कि बहुत सारे चढ़ावा-चोर बाहर हैं और पकड़े गए लोगों को कड़ी से कड़ी सजा दिलाने की बात कर रहे हैं।

हमारा समाज धीरे-धीरे कुछ भी अनुभव करने की शक्ति खोता जा रहा है। मंदिर में चोरी हो, साम्प्रदायिक हिंसा हो, दुष्कर्म हो, भ्रष्टाचार हो- हमें कुछ भी उद्वेलित नहीं करता। करने को हम सबका विरोध करते हैं, सबके खिलाफ

गुस्सा जताते हैं, लेकिन यह महज एक प्रदर्शन, एक दिखावा भर होता है कि दूसरों ने देख लिया है कि हम चुप नहीं हैं। हम बस शोर सुनते और करते हैं और मान लेते हैं कि इसी में हमारे सरोकार झलक रहे हैं। जिन मामलों की हम पर सीधी चोट पड़ती है, उन पर भी क्रोध जताने के अलावा कुछ नहीं करते- चाहे वह पेपर लीक का मामला हो या पेट्रोल में इथेनॉल मिलाने को लेकर चल रही बहस हो।

यहां से एक और सवाल पैदा होता है। क्या इस पाखंड के पीछे हमारे संस्कार भी हैं? दुनिया भर के धर्मों की यह समस्या रही है कि उनमें ईश्वर और भक्त के बीच एजेंट बैठे होते हैं, जो भरोसा दिलाते हैं कि ऊपर वाला बहुत कृपालु है और वह सबके पाप धोता रहता है। इंग्लैंड में एक दौर में पाप-विमोचन प्रमाण-पत्र बेचे जाते थे। चौदहवीं-पंद्रहवीं सदियों में चर्च में निहित भ्रष्टाचार के विरुद्ध जॉन विकलिफ से लेकर मार्टिन लूथर तक के संघर्ष ने प्रोटेस्टेंट चर्च की बुनियाद डाली। हिंदू धर्म में भी पाप-निवारण के बहुत सारे उपाय और कर्मकांड प्रचलित हैं। इस्लाम में भी मौलवियों के अजीबोगरीब फतवों ने सच्चे मुसलमानों का जीना मुश्किल कर रखा है। ऐसे धार्मिक पाखंड व वर्चस्व के साथ जब राजनीति जुड़ जाती है तो मंदिर-निर्माण से लेकर राष्ट्र-निर्माण तक की परियोजनाएं अप्राश्नेय पवित्रतावाद की आड़ में तमाम तरह के धतकरमों से आगे बढ़ाई जाती हैं। इसमें सच्चा धार्मिक व्यक्ति ही सबसे अकेला पड़ जाता है।

क्या भारत में भी इन दिनों यही खेल चल रहा है, जिसे इस उत्तर-आधुनिक समय की विडम्बनाएं कुछ और बेलगाम होने में मदद कर रही हैं? अब बाजार वह नियामक शक्ति है, जिसे पता है कि कब राजनीति का इस्तेमाल करना है, कब धर्म का और कब खेल का। चढ़ावा-चोरी भी इस बाजार के लिए एक विक्रय योग्य विषय ही है, जिसमें एक तरफ राजनीतिक समीकरण हैं तो दूसरी तरफ निजी आस्थाओं का हवाला।

इस लड़ाई में जीत उसकी नहीं होगी, जो यह भरोसा दिलाएगा कि वह चढ़ावा-चोरी पूरी तरह रोक देगा या मंदिर की पवित्रता बनाए रखेगा, बल्कि उसकी होगी, जिसके होने से एक बड़े तबके में अपने हितों की सुरक्षा का आश्वासन होगा। एक बहुत स्थूल- मोटी चमड़ी वाली- स्वार्थपरता शायद इन दिनों हमारा मिजाज बनी हुई है और हमें इस बात से बहुत फर्क नहीं पड़ता कि दुनिया में क्या हो रहा है और कैसे हो रहा है। दुर्भाग्य से जब उसकी मार हम पर पड़ती है, तब हमें समझ में आता है कि हमारी निर्लिप्तता या तटस्थता ही हमारी वास्तविक शत्रु है।

Date: 15-07-26

कई देशों के उदाहरण हमें बताते हैं कि तरक्की के सच्चे पैमाने क्या हैं

डॉ. राजीव ओबेरॉय, (लेखक और अर्थशास्त्री)

इतिहास के अनेक अनुभव और उदाहरण हमें सिखाते हैं कि तरक्की की माप महज आंकड़ों से नहीं मिल सकती। यकीनन, आर्थिक वृद्धि का आकलन जीडीपी, बुनियादी ढांचे, निर्यात तथा तकनीकी प्रगति जैसे इंडिकेटर्स से किया जाता है। लेकिन ये किसी राष्ट्र की प्रगति का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकते। किसी देश की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके साथ-साथ राजनीतिक संस्थाएं, कानूनी-व्यवस्था, सामाजिक मान्यताएं, शिक्षा तथा सांस्कृतिक मूल्य भी समान रूप से विकसित हो रहे हैं या नहीं। जब ये सभी संतुलित रूप से आगे बढ़ते हैं, तब समाज परिवर्तन को अधिक सहजता और स्थिरता से आत्मसात करता है। इसके विपरीत, जब इनके बीच असंतुलन उत्पन्न होता है, तब सामाजिक और राजनीतिक तनाव उभरने लगते हैं।

इंग्लैंड इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। मैग्ना कार्टा से लेकर ग्लोरियस रिवोल्यूशन और औद्योगिक क्रांति तक- वहां संवैधानिक व्यवस्था, वित्तीय बाजार, संसदीय संस्थाएं तथा व्यापारिक विस्तार कई शताब्दियों में क्रमशः विकसित हुए। आर्थिक प्रगति के साथ-साथ कानून के राज, अनुबंधों के क्रियान्वयन तथा प्रतिनिधिक संस्थाओं को भी निरंतर सुदृढ़ किया गया।

जापान का अनुभव भिन्न होते हुए भी इतना ही शिक्षाप्रद है। मेइजी पुनर्स्थापन के दौरान उसने तीव्र आधुनिकीकरण किया और उद्योग, शिक्षा, टेक्नोलॉजी में बड़े निवेश किए। साथ ही अपनी सांस्कृतिक पहचान के महत्वपूर्ण तत्वों को भी सुरक्षित रखा। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में औद्योगिक नीति, सामाजिक अनुशासन, उत्कृष्ट शिक्षा और संस्थागत स्थिरता का समन्वय किया गया। उधर अमेरिका ने यकीनन असाधारण आर्थिक विस्तार किया है, किंतु उसके अनेक गहरे सामाजिक परिवर्तन कई पीढ़ियों में विकसित हुए। लोकतांत्रिक संस्थाएं, सार्वजनिक विमर्श तथा संवैधानिक प्रक्रियाएं ऐसे माध्यम बने, जिनके द्वारा समाज ने समय के साथ बड़े बदलावों को स्वीकारा।

ईरान में शाह के शासनकाल के दौरान तीव्र आधुनिकीकरण ने आर्थिक विकास और आधारभूत संरचना में उल्लेखनीय प्रगति की, किन्तु सामाजिक एवं सांस्कृतिक असंतुलन ने अंततः 1979 की क्रांति का मार्ग प्रशस्त किया। लैटिन अमेरिका के कई देशों तथा वेनेजुएला के अनुभव भी यह दर्शाते हैं कि कमजोर संस्थाएं आर्थिक उपलब्धियों को टिकाऊ नहीं बना पातीं। अफ्रीका में बोत्सवाना ने मजबूत संस्थाओं और विवेकपूर्ण संसाधन-प्रबंधन के माध्यम से स्थिरता प्राप्त की, जबकि कमजोर शासन वाले देशों में विकास लंबे समय तक टिक नहीं पाया।

ये उदाहरण किसी सार्वभौमिक नियम की स्थापना नहीं करते, लेकिन वे एक समान प्रवृत्ति अवश्य दर्शाते हैं। यह कि स्थायी समृद्धि आर्थिक नीति, संस्थाओं, कानूनों, शिक्षा, सामाजिक विश्वास तथा सांस्कृतिक अनुकूलन के संतुलित समन्वय पर आधारित होती है।

नीति-निर्माताओं के लिए यह महत्वपूर्ण संदेश है कि बुनियादी ढांचा, निवेश और टेक्नोलॉजी तभी अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं, जब उनके साथ पारदर्शी शासन, सक्षम संस्थाएं, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और जनता का विश्वास भी विकसित हो।

राष्ट्रों का इतिहास अंततः यह शिक्षा देता है कि समृद्धि केवल आर्थिक वृद्धि की गति से ही तय नहीं होती, बल्कि इस बात से भी होती है कि संस्थाएं, संस्कृति, कानून और समाज कितने सामंजस्यपूर्ण ढंग से विकसित होते हैं। प्रगति का वास्तविक माप केवल बढ़ती आय नहीं, बल्कि समाज की सामूहिक रूप से विकसित होने की क्षमता है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 15-07-26

भारतवंशियों की वैश्विक सफलता के मायने

अजय छिब्बर, (लेखक जॉर्ज वॉशिंगटन विश्वविद्यालय के इंस्टीट्यूट फॉर इंटरनैशनल इकनॉमिक पॉलिसी में विशिष्ट अतिथि विद्वान हैं।)

भारतीयों को दुनिया भर में कामयाबी क्यों मिलती है और वे शीर्ष पर क्यों पहुंचते हैं? इस प्रश्न का उत्तर हमें बता सकता है कि कैसे भारत विश्व में शीर्ष स्तर पर पहुंच सकता है। विदेश में रहने वाला करीब 3.5 करोड़ की संख्या में भारतीय समुदाय, यानी आबादी का करीब 2.5 फीसदी हिस्सा, उन देशों में बहुत अच्छा प्रदर्शन कर रहा है, जहां वह रहता है। सिंगापुर के राजनयिक और लेखक किशोर महबूबानी ने 2021 में के आर नारायण जन्मशती व्याख्यान में तर्क दिया था कि भारतीय लोग भारत के बाहर बहुत अच्छा प्रदर्शन इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा का अवसर मिलता है।

अमेरिका में उनके तर्क के पक्ष में सबूत चौकाने वाले हैं। किसी ने यह उम्मीद नहीं की थी कि भारतीय-अमेरिकी जो अमेरिका की आबादी का 1.5 फीसदी हैं और जिनकी औसत प्रति व्यक्ति आय 70,000 डॉलर से अधिक है वे औसतन श्वेत अमेरिकियों, जापानी-अमेरिकियों, चीनी अमेरिकियों और यहां तक कि यहूदी अमेरिकियों से भी अधिक संपन्न होंगे जिन्हें धन संचय और व्यावसायिक कौशल के लिए जाना जाता है। आज शीर्ष 30 कारोबारी समूहों में से कुछ के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सीईओ) भारतीय मूल के हैं और भारतीय स्वास्थ्य सेवा तथा विज्ञान, विशेषकर सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े क्षेत्रों में प्रमुखता रखते हैं।

भारतीय मूल के राजनेता भी अमेरिका में बहुत उच्च पदों तक पहुंचे हैं। इनमें सीनेटर, कांग्रेस सदस्य, राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार और सिविल सेवा के शीर्ष पद शामिल हैं। कुछ आलोचकों का तर्क है कि यह आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि अमेरिका में मुख्यतः अत्यधिक शिक्षित भारतीय ही प्रवासी के रूप में जाते हैं। विशेषकर शीर्ष इंजीनियरिंग और मेडिकल संस्थानों के स्नातकों के रूप में लेकिन यदि आप दुनिया भर में देखें तो भारतीय वहां

भी सफल हुए हैं जहां प्रवास इतना अधिक चयन वाला नहीं था और समाज के सभी वर्गों मसलन गरीब, कम शिक्षित और अक्सर गंभीर भेदभाव का सामना करने वाले वर्ग शामिल हैं।

भारतीय मूल के लोग ब्रिटेन में सबसे बेहतर आर्थिक और सामाजिक रूप से सफल जनसांख्यिकीय समूहों में से हैं। वहां प्रारंभिक प्रवासी बहुत शिक्षित नहीं थे और भेदभाव का सामना करते थे। वे लगातार राष्ट्रीय औसत से बेहतर प्रदर्शन करते हैं। यहां तक कि प्रमुख मानकों जैसे घरेलू संपत्ति, रोजगार दर और शैक्षिक उपलब्धि के मामले में वे श्वेत ब्रिटिश बहुसंख्यकों से भी बेहतर रहे हैं। ब्रिटिश भारतीयों ने देश में कुछ सर्वोच्च राजनीतिक पद भी संभाले हैं जिनमें ऋषि सुनक का प्रधानमंत्री बनना ऐतिहासिक कामयाबी रही है। जो भारतीय एक सदी से अधिक पहले ब्रिटिश साम्राज्य के हिस्सों में अनुबंधित मजदूरों के रूप में गए थे उन्होंने भी उल्लेखनीय सफलता हासिल की है। मॉरीशस में हिंदुस्तानी मूल के लोग कुल आबादी का 70 फीसदी हैं। वे 19वीं और 20वीं शताब्दी में ब्रिटिश गन्ना बागानों के लिए अनुबंधित मजदूरों के रूप में पहुंचे थे। उनकी असाधारण सफलता जनसांख्यिकीय प्रभुत्व, भूमि स्वामित्व की रणनीतिक बढ़त, मजबूत शिक्षा और अंततः राजनीतिक नियंत्रण से आई है और आज उनकी प्रति व्यक्ति आय 14,000 डॉलर से अधिक है। त्रिनिडाड में भी भारतीय मूल के लोगों ने असाधारण कामयाबी हासिल की है। वहां वे जनसंख्या का 37 से 42 फीसदी हिस्सा हैं और देश के सबसे बड़े जातीय समूहों में से एक हैं। भारतीय वहां 1845 में अनुबंधित मजदूरों के रूप पहुंचे और उन्होंने उस देश में गहन राजनीतिक और आर्थिक सफलता हासिल की। इस समुदाय ने अपार राजनीतिक शक्ति प्राप्त की और कई प्रधानमंत्री जैसे कमला प्रसाद बिसेसर और वासुदेव पांडेय आदि ने देश का नेतृत्व किया। आज उनकी औसत आय 20,000 डॉलर से अधिक है।

त्रिनिडाड में भी भारतीय मूल के लोगों ने असाधारण कामयाबी हासिल की है। वहां वे जनसंख्या का 37 से 42 फीसदी हिस्सा हैं और देश के सबसे बड़े जातीय समूहों में से एक हैं। भारतीय वहां 1845 में अनुबंधित मजदूरों के रूप पहुंचे और उन्होंने उस देश में गहन राजनीतिक और आर्थिक सफलता हासिल की। इस समुदाय ने अपार राजनीतिक शक्ति प्राप्त की और कई प्रधानमंत्री जैसे कमला प्रसाद बिसेसर और वासुदेव पांडेय आदि ने देश का नेतृत्व किया। आज उनकी औसत आय 20,000 डॉलर से अधिक है।

भारतीय मूल के लोगों ने गयाना में भी 19वीं और शुरुआती 20 वीं शताब्दी में कृषि मजदूरों के रूप में शुरुआत करने के बाद सफलतापूर्वक स्थानीय वाणिज्य, चावल और चीनी उद्योगों पर प्रभुत्व जमाने तक का सफर तय किया और अब वे वहां की तेजी से बढ़ती अपतटीय तेल अर्थव्यवस्था में प्रमुख भूमिकाएं निभा रहे हैं। आज उनकी औसत आय 33,000 डॉलर से अधिक है। उनके पास महत्त्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति भी है। भारतीय मूल के नेता इस देश का नेतृत्व कर रहे हैं। उनमें वर्तमान राष्ट्रपति इरफान अली और उपराष्ट्रपति भरत जगदेव शामिल हैं।

दक्षिण अफ्रीका की आबादी में भारतवंशियों की हिस्सेदारी करीब 2.6 फीसदी है। वहां भी उन्होंने उल्लेखनीय आर्थिक और राजनीतिक सफलता हासिल की है। कठोर ऐतिहासिक उत्पीड़न के बावजूद इस समुदाय ने वहां समृद्ध व्यवसाय खड़े किए और प्रमुख नेता भी तैयार किए। ऐसे नेता जिन्होंने रंगभेद विरोधी संघर्ष और दक्षिण

अफ्रीका की आधुनिक लोकतांत्रिक सरकार दोनों भूमिका निभाई। उन्होंने पूर्वी अफ्रीका और फिजी में और भी अधिक आर्थिक सफलता प्राप्त की, लेकिन वहां उन्हें जानबूझकर औपनिवेशिक शासकों और स्थानीय आबादी के बीच रखा गया जिससे उनके प्रति असंतोष पैदा हुआ और बेहतर संभावनाओं की तलाश में उन्होंने ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन और अमेरिका की ओर पलायन किया। ऋषि सुनक के माता पिता इसी पूर्वी अफ्रीका से ब्रिटेन की दिशा में हुए पलायन का हिस्सा थे।

पुर्तगाल में भी भारतीय मूल के लोग डॉक्टर, वकील, राजनेता और शिक्षाविद के रूप में प्रमुख पदों पर आसीन हैं। इनमें ऐसे लोग शामिल हैं जिनकी जड़ें गोवा और दमन एवं दीव से जुड़ी हैं। पूर्व पुर्तगाली प्रधानमंत्री एंटोनियो कोस्टा अपनी मां के पक्ष से गोवा के हैं। वह इस उच्चस्तरीय नेतृत्व का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आयरलैंड में भी भारतीय समुदाय असाधारण रूप से सफल है। वह वहां अच्छी तरह से एकीकृत है और स्वास्थ्य सेवा, प्रौद्योगिकी, शिक्षा तथा वित्त में व्यापक रूप से प्रतिनिधित्व करता है। इस सफलता का सबसे प्रमुख उदाहरण लियो वराडकर हैं, जिन्होंने 2017 से 2020 तक और फिर 2022 से 2024 तक आयरलैंड के ताओसीच (प्रधानमंत्री) के रूप में सेवा की।

भारतीय समुदाय की सफलता के इन उदाहरणों का उद्देश्य विदेश में भारतीयों की उपलब्धियों का बखान करना नहीं बल्कि यह तर्क देना है कि यदि भारत को सफल होना है तो उसे यह पूछना होगा कि आखिर क्यों भारतीय विदेश में इतनी सफलता प्राप्त करते हैं। प्रश्न यह है कि हम भारत में ऐसा प्रतिस्पर्धी श्रेष्ठता आधारित तंत्र कैसे बना सकते हैं जो भारतीयों को शीर्ष पर पहुंचने का अवसर दे। इसके लिए अफसरशाही को कम करना होगा और शिक्षा और वित्त तक पहुंच को व्यापक बनाकर और एक निष्पक्ष नियम-आधारित व्यवस्था स्थापित करनी होगी। भारत अब विदेश में रहने वाले भारतीयों की व्यक्तिगत उपलब्धियों को प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार के जरिये मान्यता रहने वाले भारतीय अब ओवरसीज सिटिजन ऑफ इंडिया (ओसीआई) कार्ड प्राप्त कर सकते हैं लेकिन अगर दोहरी नागरिकता की सुविधा मिले तो वे और खुश होंगे। पाकिस्तान, बांग्लादेश और श्रीलंका जैसे पड़ोसी मुल्क सशर्त दोहरी नागरिकता की इजाजत देते हैं। दुनिया में केवल 30 देश द्वैध नागरिकता की अनुमति नहीं देते हैं और उनमें से अधिकांश एशिया के हैं जैसे चीन, भारत और इंडोनेशिया और कुछ पश्चिम एशिया तथा अफ्रीका में मौजूद देश स्वतंत्रता के समय सुरक्षा और निष्ठा को लेकर कुछ चिंताएं थीं, जिनके कारण भारत ने दोहरी नागरिकता से इनकार किया था वे तब कुछ हद तक तर्कसंगत रही होंगी लेकिन वर्तमान में वे अनुचित हैं और पुनर्विचार योग्य हैं।

कुछ लोग पूछते हैं कि क्या विदेश में रहने वाले भारतीय भारत में पर्याप्त योगदान करते हैं। वे वास्तव में भारी मात्रा में धन वापस भेजते हैं और वे इससे भी अधिक योगदान कर सकते हैं। विदेश में रहने वाले भारतवंशियों की दुनिया भर के व्यापार, राजनीति और जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता से यही संदेश निकलता है कि भारत भी शीर्ष पर पहुंच सकता है यदि देश के 1.4 अरब लोगों को बेहतर अवसर दिए जाएं ताकि वे एक अधिक योग्यता

आधारित प्रणाली में अपनी जन्मजात प्रतिभा और कड़ी मेहनत की क्षमता का उपयोग कर सकें। किशोर महबूबानी का मानना है कि तब भारत चीन को भी पीछे छोड़ सकता है।

Date: 15-07-26

एथनॉल मिश्रण में ब्राजील से ले सकते हैं सबक

देवांशु दत्ता

ब्राजील में पेट्रोल के विकल्प के रूप में एथनॉल का इस्तेमाल भारत के लिए एक आदर्श उदाहरण हो सकता है, हालांकि इसमें कुछ सावधानियां भी बरतनी होंगी। ब्राजील ने 1973 के तेल संकट के बाद 1975 में एथनॉल मिश्रण का प्रयोग शुरू किया। भारत की तरह ब्राजील भी कच्चे तेल का एक बड़ा आयातक था। उस समय ब्राजील में सैन्य तानाशाही का शासन था, जिसे जनमत की कोई परवाह नहीं थी, इसलिए सरकार आसानी से एथनॉल मिश्रण को अनिवार्य कर सकती थी। हालांकि, कुछ वरिष्ठ सैन्य अधिकारियों के हित वाहन उद्योग से जुड़े थे, जबकि अन्य के हित गन्ने से एथनॉल बनाने वाले उद्योग में थे। इस वजह से हितों का संतुलन स्थापित हुआ।

ब्राजील ने धीरे-धीरे एथनॉल की ओर बढ़ने का विकल्प चुना। इससे ब्राजील के वाहन उद्योग और बीमा कंपनियों को कुशल फ्लेक्स फ्यूल इंजन विकसित करने के लिए आवश्यक समय मिल गया। इसका मतलब यह भी था कि फ्लेक्स फ्यूल विकल्प पर जाने से पहले, ड्राइवर अपनी इस्तेमाल की जा रही पेट्रोल गाड़ियों की पूरे डेप्रिसिएशन मूल्य का फायदा उठा सकते थे।

पचास साल बाद, ब्राजील के पेट्रोल पंपों पर ई20 और विभिन्न प्रकार के एथनॉल - पेट्रोल मिश्रण से लेकर ई100 (बिना पेट्रोल के एथनॉल और पानी का मिश्रण) तक के विकल्प उपलब्ध हैं। ब्राजील की सभी पेट्रोल कारें और अधिकांश मोटरसाइकलें फ्लेक्स फ्यूल इंजन पर चलती हैं, जिसमें किसी भी मिश्रण का उपयोग हो सकता है। ईंधन टैंकों में सेंसर लगे होते हैं जो मिश्रण की संरचना का पता लगाकर इंजन टाइमिंग को बदल देते हैं। ब्राजील ने 'ड्रॉप-इन' बायोडीजल भी विकसित किया है। यह ऐसा ईंधन है जिसे बिना किसी बदलाव के डीजल इंजनों में इस्तेमाल किया जा सकता है। भारत डीजल में 15 फीसदी आइसोब्यूटेनॉल मिलाने पर विचार कर रहा है, जिससे जुड़ी अपनी कुछ समस्याएं भी हैं।

ब्राजील का आकार भारत से लगभग तीन गुना है, लेकिन इसकी जनसंख्या भारत की जनसंख्या का सातवां हिस्सा ही है। यह उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में स्थित है। इसका अर्थ है कि वहां कृषि योग्य भूमि प्रचुर मात्रा में है। वहां गन्ने की बड़े पैमाने पर खेती की जाती है। गन्ने में शर्करा की मात्रा अधिक होने के कारण यह एथनॉल उत्पादन के लिए सबसे उपयुक्त फसल है। हमेशा से ही ब्राजील में कृषि विज्ञान के क्षेत्र में उन्नत अनुसंधान और विकास की परंपरा रही है, जिसके कारण इसने गन्ने से एथनॉल निकालने के और भी अधिक कुशल तरीके खोजे। वहां वाहन का एक बड़ा घरेलू बाजार भी है और निर्माताओं ने ब्राजीलियाई कारों में फ्लेक्स- फ्यूल इंजन लगाना शुरू कर दिया था।

ब्राजील में 1970 और 1980 के दशकों में बेतहाशा महंगाई रही, जो अक्सर इन दशकों में प्रति वर्ष 100 फीसदी से अधिक दर्ज की गई। लेकिन आम राय यह है कि एथनॉल मिश्रण ने दुष्प्रभावों को कुछ कम करने में मदद की क्योंकि इसने देश को तेल संकटों से बचाया। इसका नकारात्मक पहलू यह था कि गन्ने की व्यापक खेती से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से बड़े पैमाने पर पर्यावरणीय क्षति हुई। गन्ना बड़ी मात्रा में पानी की खपत करने वाली फसल है जिसे अच्छी मिट्टी की आवश्यकता होती है। कटाई के बाद इसे आमतौर पर जलाकर नष्ट कर दिया जाता है।

ऐसे क्षेत्रों में गन्ने के बागान फैल गए, जबकि कम उपजाऊ क्षेत्रों में पशुपालक किसान रहने लगे और ऐसी फसलें उगाई जाने लगीं जो कम अनुकूल परिस्थितियों में भी उग सकती थीं। इस प्रकार, गन्ने की खेती से अटलांटिक तट की उपजाऊ भूमि प्रदूषित हुई, वहीं मवेशी पालकों और अन्य किसानों को विस्थापित होकर अमेजन में बसना पड़ा। उन्होंने वर्षावन काट डाले और स्थानीय आदिवासी लोगों को मार डाला। यह प्रक्रिया जारी रही और कहा जाता है कि झाइर बोल्सोनारू के शासनकाल में इसमें तेजी आई, जब वर्षावन और वहां की जनजातियों की रक्षा करने वाले कानूनों को रद्द कर दिया गया।

इस प्रक्रिया के कुछ नकारात्मक पहलुओं के बावजूद, हम कह सकते हैं कि ब्राजील द्वारा एथनॉल को अपनाना एक हद तक सफल रहा है। जीवाश्म ईंधन की तुलना में एथनॉल का उत्सर्जन कम है। ब्राजील के उपभोक्ताओं के पास कई मिश्रण का विकल्प है, जिनकी कीमत कच्चे तेल और एथनॉल की मौजूदा कीमतों के अनुसार तय की जाती है। लंबे समय तक मिले समय ने वाहन उद्योग को इस बदलाव के लिए तैयारी करने का मौका दिया, और लोगों को आर्थिक नुकसान नहीं हुआ, जैसे कि अचानक उनके वाहनों के माइलेज में भारी गिरावट आना और रबर के पुर्जों का जल्दी खराब होना ।

भारत के बाद ब्राजील दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा गन्ना उत्पादक देश है। भारत में ब्राजील से ज्यादा चीनी और खांडसारी की खपत होती है (भारत एथनॉल उत्पादन के लिए टूटे अनाज और चावल का उपयोग भी करता है) भारत की जनसंख्या ब्राजील से कहीं अधिक है, कृषि योग्य भूमि बहुत कम है और जल की कमी भी अधिक है। यदि गन्ने की खेती का रकबा वर्तमान स्तर से बढ़ता है, तो पर्यावरण का क्षरण काफी होगा। भारत में अमेजन जैसे विशाल वर्षावन भी नहीं हैं, जहां विस्थापित फसलों को पुनः बोया जा सके (आदिवासियों के विस्थापन की

बात तो छोड़ ही दीजिए)। गन्ने की खेती वाले मुख्य जिलों में आबादी का एक बड़ा हिस्सा उद्योग की मूल्य श्रृंखला से जुड़ा हुआ है, और एथनॉल के आने से यह मूल्य श्रृंखला और बढ़ गई है। इससे गन्ना राजनीतिक रूप से संवेदनशील मुद्दा बन जाता है, क्योंकि मतदाताओं का भविष्य उद्योग के रुझानों से जुड़ा होता है।

ईंधन के रूप में एथनॉल का इस्तेमाल गन्ना उद्योग लिए अच्छा है। लेकिन वाहन उद्योग की मूल्य श्रृंखला भी बहुत लंबी है और इससे बहुत ज्यादा रोजगार पैदा होते हैं। ब्राजील के सैन्य जनरलों ने भी वाहन उद्योग और गाड़ी मालिकों पर तेजी से बदलाव थोपने से परहेज किया था। भारत उस संतुलन को बनाने में चूक गया है। हो सकता है कि उसे पर्यावरण का नुकसान भी उठाना पड़े और साथ ही वाहन निर्माताओं और आर्थिक नुकसान सहने वाले गाड़ी मालिकों की नाराजगी भी झेलनी पड़े।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 15-07-26

ऑस्ट्रेलियाई यूरेनियम हमें समृद्ध करेगा

सी उदय भास्कर,(निदेशक, सोसाइटी ऑफ पॉलिसी स्टडीज)

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के ऑस्ट्रेलिया दौरे से दो रणनीतिक क्षेत्रों- परमाणु ऊर्जा और समुद्री सुरक्षा- में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। इससे भारत-ऑस्ट्रेलिया साझेदारी तो मजबूत हुई ही है, हिंद-प्रशांत क्षेत्र के लिहाज से भी यह द्विपक्षीय संबंध अब काफी अहम हो गया है।

इसमें परमाणु संबंध खासा महत्वपूर्ण है, विशेषकर इससे जुड़ी कड़वी यादों को देखते हुए। गौरतलब है, जब भारत ने मई 1998 में 'ऑपेरशन शक्ति' के तहत परमाणु परीक्षण किए थे, तब कैनबरा ने नई दिल्ली की कड़ी निंदा करते हुए इसे 'परमाणु प्रसार करने वाला' कदम बताया था और अपने तमाम सुरक्षा/ सैन्य संबंध निलंबित कर दिए थे। यहां तक कि भारतीय डिफेंस अटैची को 48 घंटे के अंदर ऑस्ट्रेलिया छोड़ना पड़ा था। परमाणु शक्ति बनने के प्रधानमंत्री वाजपेयी के फैसले से दोनों मुल्कों के संबंधों में भारी गिरावट आई थी, जिसमें सुधार की शुरुआत 2008 में हुए अमेरिका-भारत असैन्य परमाणु समझौते के बाद ही हो पाई।

साल 2014 में भारत और ऑस्ट्रेलिया के बीच नागरिक परमाणु सहयोग समझौता हुआ जरूर, मगर करीब एक दशक तक यह दिखावटी रहा। उल्लेखनीय है कि दुनिया में ज्ञात यूरेनियम भंडार का करीब 28 प्रतिशत हिस्सा ऑस्ट्रेलिया के पास है। भारत के 1974 और 1998 के परमाणु परीक्षणों के बाद कैनबरा ने दशकों तक नई दिल्ली को यूरेनियम देने से इनकार किया, क्योंकि भारत ने परमाणु अप्रसार संधि (एनपीटी) पर दस्तखत नहीं किए थे।

इसीलिए, 2014 के समझौते को लागू करने के मौजूदा फैसले का महत्व प्रतीकात्मक, व्यावहारिक और रणनीतिक, तीनों है।

शुरुआत प्रतीकात्मक से। यूरेनियम देने पर सहमति जताकर ऑस्ट्रेलिया ने भारत को एक 'जिम्मेदार परमाणु शक्ति' मान लिया है। इससे भारत उन देशों की श्रेणी में आ गया, जिन्हें पहले से ही ऑस्ट्रेलिया से यूरेनियम मिलता रहा है, जैसे- अमेरिका, फ्रांस, रूस और कनाडा। परमाणु समझौते का निहितार्थ यही था कि भारत के गैर-एनपीटी दर्जे को ऑस्ट्रेलिया अपने परमाणु अप्रसार संबंधी नीति से अलग मानने लगा है। इस मान्यता ने भारत को 'एनपीटी' गुट से बाहर अपनी स्थिति सुधारने में मदद की, साथ ही उसे वैश्विक परमाणु व्यवस्था में एक खास दर्जा भी दिलाया। यह ऊर्जा के क्षेत्र में जितनी बड़ी उपलब्धि थी, उतनी ही रणनीतिक स्तर पर भी। प्रधानमंत्री मोदी की मौजूदा यात्रा में इसे लागू करने पर जोर दिया गया है, जिसका मतलब है कि दोनों पक्ष सिद्धांतों से आगे बढ़कर समझौते को अंतिम रूप देने की दिशा में आगे बढ़ना चाहते हैं।

व्यावहारिक पहलू की बात करें, तो यह ईंधन सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के लक्ष्य बहुत बड़े हैं। अभी हम 8.8 गीगावट परमाणु ऊर्जा का उत्पादन कर रहे हैं और नई दिल्ली को उम्मीद है कि 2031 तक इसे बढ़ाकर 22 गीगावाट कर लिया जाएगा। अंतिम लक्ष्य 2047 तक 100 गीगावाट तक उत्पादन बढ़ाना है, जो आसान काम नहीं है।

भारत सिर्फ घरेलू यूरेनियम से यह लक्ष्य नहीं हासिल कर सकता। साल 2008 में परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (एनएसजी) द्वारा दी गई छूट से पहले, ईंधन की कमी के कारण भारतीय रिएक्टरों को अपनी 50-60 फीसदी क्षमता पर ही काम करना पड़ता था। छूट मिलने के बाद, भारत ने रूस, फ्रांस, कजाकिस्तान और कनाडा जैसे देशों से यूरेनियम लेना शुरू किया। ऑस्ट्रेलिया के भी इसमें शामिल हो जाने से नई दिल्ली का दायरा व्यापक हो गया है। वैश्विक कमोडिटी बाजार और भू-राजनीति में उतार-चढ़ाव को देखते हुए दुनिया के सबसे बड़े यूरेनियम भंडार वाले देश से आपूर्ति मिलने पर दीर्घकालीन भरोसा बनेगा। इस समझौते में सुरक्षा उपाय व निगरानी की व्यवस्थाएं भी शामिल हैं, जिनसे ऑस्ट्रेलिया की चिंताओं का समाधान होता है।

अब इसके रणनीतिक पक्ष की चर्चा, जो सबसे महत्वपूर्ण है। भारत के स्वदेशी 'प्रेशराइज्ड हेवी वाटर रिएक्टर' यानी पीएचडब्ल्यूआर (220 मेगावाट, 540 मेगावाट और 700 मेगावाट) तकनीक के लिहाज से निस्संदेह शानदार हैं, लेकिन वे आकार में छोटे हैं। कार्बन उत्सर्जन तेजी से घटाने और बिजली की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए हमें फ्रांस, रूस व अमेरिका जैसे सहयोगियों से 1000 मेगावाट से अधिक क्षमता वाले 'लाइट वाटर रिएक्टर' चाहिए। इन रिएक्टरों में यूरेनियम का अधिक इस्तेमाल होता है।

यहीं पर ऑस्ट्रेलिया की भूमिका अहम हो जाती है। असैन्य रिएक्टरों के लिए ऑस्ट्रेलिया द्वारा यूरेनियम की आपूर्ति करने से भारत अपने यूरेनियम को, जो सीमित मात्रा में है, स्वदेशी पीएचडब्ल्यूआर और रणनीतिक

कार्यक्रमों के लिए बचा सकता है। 'स्मॉल मॉड्यूलर रिएक्टर' को अक्सर भविष्य की तकनीक माना जाता है, लेकिन इनका बड़े पैमाने पर व्यावसायिक इस्तेमाल करने में अभी दसेक साल का समय लगेगा।

साल 2030 के जलवायु और ऊर्जा लक्ष्यों को देखते हुए भारत को फिलहाल बड़े रिएक्टरों से काम चलाना होगा। ऑस्ट्रेलिया के साथ हुआ समझौता हमारी राह आसान बना सकता है। संक्षेप में कहें, तो यूरेनियम समझौता 'येलोकेक' (यूरेनिया) की मात्रा से कम और राजनीतिक स्वीकृति व ऊर्जा सुरक्षा से ज्यादा जुड़ा है। यह भारत को विकास और जलवायु लक्ष्यों के अनुरूप असैन्य परमाणु ऊर्जा बढ़ाने में मदद करेगा।

प्रधानमंत्री का यह दौरा समुद्री सुरक्षा के लिहाज से भी उल्लेखनीय रहा। पहली बार दोनों देशों ने 'मुक्त, समावेशी और नियम आधारित हिंद-प्रशांत' के प्रति अटूट प्रतिबद्धता जाहिर की है। संयुक्त घोषणापत्र में इसका जिक्र होना बताता है कि कूटनीतिक भाषा में सोच-विचारकर बदलाव किए गए हैं। अंतरराष्ट्रीय कानून और यूएनसीएलओएस के पालन का जिक्र करके इस क्षेत्र की 'ग्रे जोन' गतिविधियों की ओर इशारा किया गया है, वह भी बिना चीन का नाम लिए। मुमकिन है, दोनों देशों की बीजिंग पर आर्थिक निर्भरता (भारत के साथ 135 अरब का व्यापार और ऑस्ट्रेलिया की चीन के कमोडिटी निर्यात पर निर्भरता) के कारण ऐसा किया गया हो, पर यह भाषा सामान्य तालमेल के बजाय व्यावहारिक संबंध बनाने के संकेत कर रही है।

कोई भी देश अमेरिका और चीन के बीच किसी एक को चुनने के लिए मजबूर नहीं होना चाहता, पर 'अटूट प्रतिबद्धता' शब्द का मतलब है कि दिल्ली और कैनबरा ताकत पर आधारित समुद्री व्यवस्था को स्वीकार नहीं करेंगे। इसके बजाय वे कानून और परंपरा की वकालत करते दिख रहे हैं।